ISSN 0974-8857

तुलसी प्रज्ञा

TULSÍ PRAJÑÁ

वर्ष 43 • अंक 171-172 • जुलाई-दिसम्बर, 2016

A Peer Reviewed Research Quarterly

जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान) भारत
JAIN VISHVA BHARATI INSTITUTE
Ladnun - 341 306, Rajasthan, India

Scanned with CamScanner

तुलसी प्रज्ञा ISSN 0974-8857

TULSI PRAJÑĀ

A Peer Reviewed Research Quarterly of Jain Vishva Bharati Institute

YEAR-43 VOL.-171-172 JULY-DECEMBER, 2016

अनुक्रमणिका / CONTENTS

ENGLISH SECTION

Subject	Author	Page No.
Ācārāṅga-Bhāṣyam	Ācārya Mahāprajña	05-09
The Relevance of the Teachings of Lord Mahāvīra in the Modern Age	Dr Dulichand Jain	10-19
The Concept of Space and Direction in Jain Philosophy	Samani Dr Shashi Prajñā Vikas Jaina	20-35
Studies in Jaina Psychological Thought: A Review	Dr Anupam Jash	36-44
Effect of Preksha Meditation on Creative Problem Solving Ability	Samani Sulabh Pragya	45-50

हिन्दी खण्ड

विषय	लेखक	पृ. संख्या
स्थानांग सूत्र एवं अंगुत्तर निकाय में वैचारिक समानता के सूत्र	डॉ. समणी हिमप्रज्ञा	51-57
उपासकदशांग सूत्र और पंचसमवाय	डॉ श्वेता जैन	58-66
भारत में महिला शिक्षा की ओर बढ़ते कदम	डॉ. विकास शर्मा	67-77
वेदान्त दर्शन में प्रत्यक्ष की अवधारणा	विनिता सोनगरा	78-82
वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान : अनेकान्त	ईशा चौहान	83-86
भारतीय साधना पद्धति में सिद्धियाँ : साधना में साधक अथवा बाधक	मनोज कुमार टाक	87-96

Scanned with CamScanner

स्थानांग सूत्र एवं अंगुत्तर निकाय में वैचारिक समानता के सूत्र

डॉ. समणी हिमप्रज्ञा

भारतीय संस्कृति की मुख्य दो धाराएं हैं- वैदिक एवं श्रमण। बौद्धदर्शन एवं जैनदर्शन का श्रमण परम्परा से संबन्ध हैं। यही कारण है कि इनमें कुछ दृष्टियों से साम्य और कुछ दृष्टियों से वैषम्य है। साम्य इस रूप में है कि ये दोनों दर्शन न तो वेद को प्रमाण मानते हैं और न ही ईश्वर को जगत् का कर्त्ता। दोनों ही परम्परा कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करती है।

इन समानताओं के होते हुए भी दोनों धर्मों के सिद्धान्तों में कुछ अन्तर है। जिनके कारण दोनों धर्म भिन्न हैं- बौद्धदर्शन के अनुसार पदार्थ क्षणिक हैं उत्पाद एवं व्यय से युक्त हैं जबकि जैन दर्शन के अनुसार पदार्थ परिणामी नित्य माना गया है। वह उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य से युक्त है। बौद्ध दर्शन में आत्मा को पंच स्कन्धात्मक और अस्थाई तत्त्व माना गया है, जबकि जैन दर्शन में आत्मा को अखण्ड और परिणामी नित्य माना गया है।

बौद्ध और जैन धर्म का साम्य और वैषम्य स्पष्ट है अतः यह एक विचारणीय विषय है कि इन दोनों विचारधाराओं में साम्य एवं वैषम्य कहां तक है और उसका आधार क्या है? उक्त प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए धम्मपद एवं उत्तराध्ययन सूत्र तथा स्थानांग एवं अंगुत्तर निकाय का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि इन दोनों परम्पराओं में काफी साम्य एवं वैषम्य हैं। प्रस्तुत आलेख में स्थानांग सूत्र एवं अंगुत्तर निकाय के आधार पर संक्षेप में साम्य एवं वैषम्य की चर्चा करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

Scanned with CamScanner

जैनों के बारह आगमों में स्थानांग का स्थान तृतीय है। इसमें क्रमशः एक से दस तक की संख्या के विषय वर्णित हैं। इन अध्यायों में जिन विषयों का वर्णन किया गया है वे सात वर्गों में विभाजित हैं- 1. मोक्षमार्ग 2. तत्त्वज्ञान 3. गणितानुयोग 4. महापुरुष 5. संघव्यवस्था 6. पुरुष-परीक्षा एवं 7. विविध विषय

बौद्ध त्रिपिटकों में सुत्तपिटक एक है- उसके पांच भाग हैं, जो निकाय कहलाते हैं। वे हैं-1. दीर्घ निकाय 2. मज्झिमनिकाय 3. संयुक्त निकाय 4. अंगुत्तर निकाय 5. खुद्दक निकाय[1]। अंगुत्तर निकाय सुत्तपिटक का एक भाग है।

अंगुत्तरनिकाय ग्यारह निपातों में विभक्त है। इसका विभाजन संख्या के आधार पर किया गया है। एक से ग्यारह तक की संख्या से सम्बन्ध रखने वाले बुद्ध के उपदेशों का यथाक्रम इन निपातों में संकलन किया गया है।[2] इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में तत्त्व सम्बन्धी विचार संख्यात्मक रूप में व्यक्त किये गये हैं। बौद्ध आगमों में अंगुत्तरनिकाय अन्य सभी आगमों से भिन्न है इसीलिए यह विलक्षण आगम है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि अंगुत्तरनिकाय की निरुपण शैली स्थानांग की अनुकृति है। दोनों ग्रंथों में साम्य एवं वैषम्य के अनेक सूत्र प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत आलेख में कुछ सूत्रों की चर्चा की गई है।

1. आस्रव, मिथ्यात्व
2. राग, द्वेष, लोभ और मोह
3. कषाय तथा मद

आश्रव- स्थानांग सूत्र के अनुसार आश्रव एक है।[3] किन्तु आश्रवद्वार पांच हैं-1. मिथ्यात्व 2. अविरति 3. प्रमाद 4. कषाय 5. और योग। अंगुत्तरनिकाय में आश्रव तीन प्रकार के माने गए हैं काम, भव और अविद्या।[4] इस प्रकार जैन दर्शन और बौद्ध में 'आश्रव' शब्द का प्रयोग मिलता है, किन्तु अर्थ में अन्तर है। जैन परम्परा आश्रव को कर्म आने का द्वार मानती है जबकि बौद्ध परम्परा में आश्रव के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो मदिरा के समान ज्ञान का विपर्यय करें वह आश्रव है अथवा जिससे संसाररूपी दुःख का जन्म होता है, वह आश्रव है। दोनों ही परम्परा आश्रव को संसार या बन्धन का कारण मानती है तथा निर्वाण की प्राप्ति के लिए आश्रवद्वार के अर्थ की भिन्नता होने पर भी निरोध पर बल देती है।

स्थानांग सूत्र के अनुसार राग और द्वेष कर्मबन्धन के मूल कारण हैं।[5] उत्तराध्ययन सूत्र में भी राग और द्वेष को कर्म का बीज कहा गया है।[6] अंगुत्तरनिकाय में कर्म बन्धन के तीन कारण माने गये हैं-1. लोभ, 2. द्वेष और मोह।[7] भगवान् बुद्ध कहते हैं जो कोई व्यक्ति लोभ (राग), द्वेष और मोह से प्रेरित होकर छोटा या बड़ा जो भी कर्म करता है उसका फल उसी को भुगतना पड़ता है। अतः वे लोभ द्वेष और मोह के त्याग पर अधिक बल देते हैं। इस प्रकार जैन और बौद्ध दोनो ही परम्पराओं में राग, द्वेष और मोह- ये तीन बन्धन (संसार परिभ्रमण)

Scanned with CamScanner

के कारण माने गये हैं। दोनों ही परम्परा इन तीनों में सापेक्ष सम्बन्ध भी स्वीकार करती है। इस सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव लिखते हैं लोभ और द्वेष का हेतु मोह है, और राग, द्वेष मोह के हेतु हैं।[8] इस प्रकार राग, द्वेष और मोह में सापेक्ष सम्बन्ध है। मोह के कारण राग और द्वेष होता है तथा राग और द्वेष यथार्थ ज्ञान से वंचित रखते हैं। अविद्या (मोह) के कारण तृष्णा होती है और तृष्णा (राग) के कारण मोह होता है। बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार किसी बीज के जल जाने पर उस बीज की परम्परा समाप्त हो जाती है, वैसे ही व्यक्ति के राग, द्वेष और मोह का नाश हो जाने पर व्यक्ति की कर्म- विपाक परम्परा का अन्त होता है। जैनाचार्यों ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है।

स्थानांग सूत्र के अनुसार मिथ्यात्व के दस प्रकार हैं-

1. अधर्म में धर्म की संज्ञा
2. धर्म में अधर्म की संज्ञा
3. अमार्ग में मार्ग की संज्ञा
4. मार्ग में अमार्ग की संज्ञा
5. अजीव में जीव की संज्ञा
6. जीव में अजीव की संज्ञा
7. असाधु में साधु की संज्ञा
8. साधु में असाधु की संज्ञा
9. अमुक्त में मुक्त की संज्ञा
10. मुक्त में अमुक्त की संज्ञा

अंगुत्तर निकाय में भी कुछ भिन्नता के साथ मिथ्यात्व के दस प्रकार माने गये हैं

1. अधर्म को धर्म कहना
2. धर्म को अधर्म कहना
3. अविनय को विनय कहना
4. विनय को अविनय कहना
5. तथागत द्वारा भाषित को उनके द्वारा अभाषित कहना।
6. तथागत द्वारा अभाषित को उनके द्वारा भाषित कहना।
7. तथागत द्वारा अनाचरित को उनके द्वारा आचरित कहना।
8. तथागत द्वारा आचरित को उनके द्वारा अनाचरित कहना।
9. तथागत द्वारा न बनाये नियम को उनके द्वारा बनाया कहना
10. तथागत द्वारा बनाये नियम को उनके द्वारा न बनाया कहना

जैन परम्परा तथा बौद्ध परम्परा दोनों ही दस प्रकार के मिथ्यात्व को स्वीकार करती है किन्तु दोनों में काफी वैषम्य है। यद्यपि मिथ्यात्वी जो अनिष्ट करता है तथा उसका जो अनिष्ट होता है इसे दोनों परम्परा स्वीकार करती है।

Scanned with CamScanner

मिथ्यात्व के अलावा कषाय को भी संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण माना गया है। स्थानांग सूत्र में कषाय के चार प्रकार माने गये है- 1. क्रोध 2. मान 3. माया और 4. लोभ।[9] आत्मा को मलिन करने वाली समस्त भावनाएं, वासना, कुप्रवृत्तियां कषाय में गर्भित है। 'कषाय' शब्द 'कष' और 'आय' इन दो शब्दों के मेल से बना है। 'कष' का अर्थ है संसार तथा आय का अर्थ है आगमन जिससे जीव पुनः पुनः जन्म-मरण के चक्र में घूमता है वह कषाय है।[10] भगवान बुद्ध ने 'कषाय' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है- पहला जैन परम्परा के समान दूषित चित्तवृत्ति के अर्थ में तथा दूसरा, सन्यस्त जीवन के प्रतीक गेरुए वस्त्रों के अर्थ में। भगवान बुद्ध के अनुसार जो व्यक्ति कषायों को त्यागे बिना काषाय (गेरुए वस्त्रों) को पहनता है, अर्थात् संन्यास धारण करता है, ऐसा व्यक्ति जो संयम के यथार्थ स्वरूप से पतित है काषाय वस्त्रों (संन्यास मार्ग) का अधिकारी नहीं होता है। जिसने कषाय को त्याग दिया है वही काषाय वस्त्रों का अधिकारी है।[11] जैन ग्रंथों में भी साधक को कषायों पर नियन्त्रण करने पर बल दिया गया है।

कषाय के प्रकार- कषाय जनित आवेगों की अवस्थाएं भी तीव्रता की दृष्टि से समान नहीं होती है।, अतः तीव्र आवेगों के प्रेरकों कषाय और मंद आवेग के प्रेरकों को नो कषाय (उप कषाय) कहा गया है। स्थानांग सूत्र में आवेगात्मक अभिव्यक्तियों की मंदता और तीव्रता के आधार पर प्रत्येक कषायों को चार भागों में बांटा गया है-

1. तीव्रतम 2. तीव्रतर 3. तीव्र और 4. अल्प। इन्हें क्रमशः 1. अनंतानुबन्धी 2. अप्रत्याख्यानी, 3. प्रत्याख्यानी और 4. संज्वलन कषाय कहा जाता है।

जिस कषाय के प्रभाव से जीव को अनन्त काल तक भव भ्रमण करना पड़ता है उसे अनंतानुबंधी कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से देशविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नहीं होता उसे अप्रत्याख्यानावरण कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नहीं होता उसे प्रत्याख्यानावरण कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से साधक वीतराग दशा को प्राप्त नहीं होता है उसे संज्वलन कषाय कहा जाता है। इन चारों कषायों के तरतमता की दृष्टि से अनंत स्तर होते हैं संक्षेप में प्रत्येक के चार स्तर निर्धारित होने से कुल 16 भेद होते हैं।[12] निम्न नौ उप-आवेग, उपकषाय या कषाय के सहायक माने गए हैं-1. हास्य 2. रति 3. अरति 4. शोक 5. भय 6. घृणा 7. स्त्रीवेद 8. पुरुष वेद 9. और नपुंसक वेद। इस प्रकार कुल 25 कषाय हैं।[13]

क्रोध के प्रकार

1. अनन्तानुबंधी क्रोध यह तीव्रतम क्रोध होता है। पत्थर में पड़ी दरार के समान क्रोध होता है। यह किसी के प्रति एक बार उत्पन्न होने पर जीवन पर्यन्त बना रहता है, कभी समाप्त नहीं होता है। इस क्रोध में अनुप्रविष्ट (प्रवर्तमान) जीव मृत्यु के पश्चात् नरक में उत्पन्न होता है।

Scanned with CamScanner

2. अप्रत्याख्यानी क्रोध-यह क्रोध तीव्रतर होता है। यह सूखे हुए जलाशय की भूमि में पड़ी दरार के समान होता है जैसे जलाशय की दरार आगामी वर्षा होने पर मिट जाती है, वैसे ही अप्रत्याख्यानी क्रोध एक वर्ष से अधिक स्थायी नहीं रहता। इस क्रोध में अनुप्रविष्ट व्यक्ति तिर्यंच गति में उत्पन्न होता है।
3. प्रत्याख्यानी क्रोध- यह तीव्र क्रोध होता है। यह बालू की रेखा के समान होता है। जैसे बालू की रेखा हवा के झोकों से जल्दी मिट जाती है वैसे ही प्रत्याख्यानी क्रोध चार मास से अधिक स्थायी नहीं रहता। इस क्रोध में अनुप्रविष्ट जीव मरकर मनुष्य गति में उत्पन्न होता है।
4. संज्वलन क्रोध- यह अल्पकालिक क्रोध होता है -शीघ्र ही मिट जाने वाली पानी में खींची गई रेखा के समान इस क्रोध में स्थायित्व नहीं होता है। इस क्रोध में अनुप्रविष्ट जीव मरकर देव गति में उत्पन्न होता है।

अंगुत्तरनिकाय में क्रोध के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार माने गए हैं- 1. प्रथम वे व्यक्ति जिनका क्रोध पत्थर पर खींचीं रेखा के समान चिरस्थायी होता है। 2. द्वितीय वे व्यक्ति जिनका क्रोध पृथ्वी पर खींची रेखा के समान अल्पकालिक होता है। 3. तृतीय वे व्यक्ति जिनका क्रोध पानी पर खींची रेखा के समान अस्थाई होता है। दोनों परम्पराओं में प्रस्तुत दृष्टान्त में साम्य है। भगवान बुद्ध ने सूखे हुए तालाब की दरार के दृष्टान्त की चर्चा नहीं की है तथा क्रोध से किस प्रकार की गति में जन्म होता है इसकी चर्चा भी नहीं की है। भगवान महावीर ने स्थानांग सूत्र में क्रोध के आधार पर गति की चर्चा की है।

स्थानांग सूत्र में क्रोध की भांति मान (अहंकार), माया, और लोभ के चार-चार दृष्टान्तों का विवेचन किया गया है, किन्तु अंगुत्तर निकाय में केवल क्रोध के ही तीन दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ को बौद्ध दर्शन में दूषित चित्तवृत्ति के रूप में माना गया है। बुद्ध कहते हैं क्रोध को छोड़ दो और अभिमान का त्याग कर दो, समस्त संयोगों को तोड़ दो। जो पुरुष लोभ नहीं करता, जो अकिंचन है, उस पर क्लेशों का आक्रमण नहीं होता।[14] सुत्तनिपात में कहा गया है कि जो क्रोध करता है, वैरी है तथा जो मायावी है, उसे वृषल (नीच) व्यक्ति जानना चाहिए।[15]

कषाय एवं राग, द्वेष की भांति मद को भी कर्मबन्धन का कारण माना गया है। मद अर्थात् अंहकार। मनुष्य में स्वाभिमान की मूल प्रवृत्ति होती है, परन्तु जब स्वाभिमान की वृत्ति दम्भ या प्रदर्शन का रूप ले लेती है तब मनुष्य अपने गुणों एवं योग्यताओं को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने लगता है इस प्रकार उसके भीतर अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। जैन परम्परा एवं बौद्ध परम्परा दोनों ही मद को स्वीकार करती है। जैन परम्परा में मद आठ प्रकार के माने गये हैं। बौद्ध परम्परा में मद के तीन प्रकार देखे जाते हैं। स्थानांग सूत्र में क्रोध के

Scanned with CamScanner

समान ही मद (अहंकार) का चार प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। इसके अलावा किस प्रकार के अहंकार में प्रविष्ट व्यक्ति नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में जन्म लेता है इसका भी विवेचन प्राप्त होता है। बौद्ध परम्परा मद को दुर्गति, पतन एवं नरक गति का कारण मानती है। भगवान महावीर ने स्थानांग सूत्र में मद के आठ प्रकार बताएं हैं। वे आठ प्रकार हैं- 1. जाति 2. कुल 3. बल 4. रूप 5. तप 6. श्रुत 7. लाभ 8. तथा ऐश्वर्य।[16] अंगुत्तर निकाय में भगवान बुद्ध ने मद के तीन प्रकार तथा उनसे होने वाले उपायों का निर्देश भी किया है- 1. यौवनमद 2. आरोग्यमद 3. और जीवनमद। भगवान बुद्ध कहते हैं इन तीनों मद से उन्मत व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से दुष्कर्म करता है। वह नैतिक मूल्यों को त्याग देता है उसकी दुर्गति और पतन होता है। तथा वह मरकर नरक में उत्पन्न होता है।[17] जैन परम्परा के अनुसार अनन्तानुबन्धी अहंकार में अनुप्रविष्ट व्यक्ति ही नरक में जाता है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि दोनों ही आगम कुछ भिन्नता के साथ बन्धन का कारण या संसार परिभ्रमण का कारण आश्रव, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मोह, कषाय एवं मद को स्वीकार करते हैं। जब तक इनका नाश नही होता तब तक प्राणी चतुर्गतिमय संसार में अनंतकाल तक जन्म एवं मृत्यु को तथा तज्जनित दुःखों को प्राप्त करता है। यही कारण है कि कर्मफल भोग के लिए दोनों ही परम्परा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। यद्यपि सामान्यतः बौद्धदर्शन अनात्मवादी माना गया है फिर भी आत्मा भवभ्रमण करती है इस तथ्य को स्वीकार किया गया हैं। भगवान महावीर जिसे मोक्ष कहते हैं। भगवान बुद्ध उसे निर्वाण कहते हैं। अतः दोनों ही परम्परा मुक्ति के लिए जन्म और मृत्यु की परम्परा को नष्ट करना आवश्यक मानती है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. ठाणं, वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक-विवेचक मुनि नथमल, लाडनूं: जैन विश्वभारती, प्रथम संस्करण, वि.सं., 2033
2. अंगुत्तर निकाय (खण्ड-1) एवं (खण्ड-2), अनुवादक श्रीचन्द रामपुरिया, लाडनूं : जैन विश्व भारती संस्थान, प्रथम संस्करण, 2000
3. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन (खण्ड-2) राष्ट्र सन्त मुनिश्री नगराजजी, (डी.लिट्.) प्रकाशक- अर्हत् प्रकाशन, कलकत्ता-अ.भा. जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा
4. डॉ.सागरमल जैन, भारतीय आचार-दर्शन एक तुलनात्मक अध्ययन (भाग-1) जयपुर: प्राकृत भारती अकादमी एवं प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)
5. उत्तरज्झयणाणि वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक-विवेचक मुनि नथमल, लाडनूं : जैन विश्वभारती
6. अभिधान राजेन्द्र कोश (खण्ड तीन) आचार्य विजय राजेन्द्र सूरि रतलाम, प्रकाशक : 1913-34
7. बौद्ध तथा जैन धर्म महेन्द्रनाथ सिंह, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1990

Scanned with CamScanner

सन्दर्भ सूची -

1. आगम और त्रिपिटिकः एक अनुशीलन, पृ. 207
2. आगम और त्रिपिटिकः एक अनुशीलन, पृ. 213
3. ठाणं, 1/13
4. भारतीय आचारदर्शनों का एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 396
5. ठाणं, 2/394
6. उत्तराध्ययन, 32/7
7. अंगुत्तर निकाय, 3/33
8. बौद्धदर्शन, पृ. 25
9. ठाणं, 4/282-284।
10. अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड, 3, पृ. 395
11. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 509
12. उत्तराध्यन, 33/11
13. अभिधान राजेन्द्रकोश, खण्ड-3, पृ. 395
14. जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म के सन्दर्भ में भारतीय आचार-दर्शनः एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 535
15. सुत्तनिपात्त, 6/14
16. ठाणं, 8/21
17. अंगुत्तर निकाय खण्ड, 214/9

सह आचार्य
जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडन

Scanned with CamScanner